ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-6.125
Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026
Page No.- 406-413
DOI :-10.71037/gyanvividha.v3i2.61
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

HANSA SHARMA
शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर.

Corresponding Author :

HANSA SHARMA
शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर.

स्वदेशी, आत्मनिर्भरता और स्थानीय अर्थव्यवस्था : दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारों की वर्तमान भारत में प्रासंगिकता

सारांश : यह शोध-पत्र दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक चिंतन में निहित स्वदेशी, आत्मनिर्भरता और स्थानीय अर्थव्यवस्था की अवधारणाओं का समकालीन भारत के संदर्भ में आलोचनात्मक पुनर्पाठ करता है। अध्ययन का मूल प्रश्न यह है कि क्या उनका आर्थिक दृष्टिकोण केवल ऐतिहासिक-वैचारिक विरासत है, अथवा वह रोजगार, उत्पादन-विकेंद्रीकरण, बाजार-संकेंद्रण और पारिस्थितिक संकट से जूझते वर्तमान के लिए कोई उपयोगी मूल्यांकन-कसौटी भी देता है। गुणात्मक, व्याख्यात्मक और विषयवस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति से छह प्राथमिक कृतियों, चार व्याख्यात्मक ग्रंथों, छह हिन्दी शोध-पत्रों तथा दो शोध-प्रबंधों कुल अठारह स्रोतों का अध्ययन किया गया है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उपाध्याय के लिए स्वदेशी बाहरी ज्ञान का निषेध नहीं, बल्कि राष्ट्रीय 'स्व' के अनुरूप उसका विवेकपूर्ण अनुकूलन है; आत्मनिर्भरता आत्मबंदी नहीं, बल्कि स्थानीय उत्पादन-क्षमता, श्रम की गरिमा और निर्णय-सामर्थ्य का विकास है; तथा स्थानीय अर्थव्यवस्था केवल लघुता नहीं, आर्थिक लोकतंत्र की संस्थागत भूमि है। शोध यह भी रेखांकित करता है कि उनकी प्रासंगिकता नीतिगत नारों में नहीं, बल्कि चार कसौटियों प्रत्येक को सार्थक काम, उत्पादन का विकेंद्रीकरण, अंतिम व्यक्ति की गरिमा और प्रकृति-मर्यादा में निहित है। साथ ही, जाति, लैंगिकता, डिजिटल बाजार-शक्ति और वैश्विक मूल्य-श्रृंखलाओं के प्रश्नों पर उनके ढाँचे को आलोचनात्मक विस्तार देना आवश्यक है।

मुख्य शब्द : स्वदेशी; आत्मनिर्भरता; स्थानीय अर्थव्यवस्था; एकात्म मानववाद; अंत्योदय; विकेंद्रीकरण; उपयुक्त प्रौद्योगिकी।

1. परिचय : भारतीय विकास-विमर्श लंबे समय से दो आकांक्षाओं के बीच चलता रहा है। विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़कर उत्पादन और तकनीक का विस्तार, तथा अपनी सामाजिक संरचना, श्रम-संस्कृति और स्थानीय जीवन-जगत को सुरक्षित रखते हुए विकास। जब अर्थव्यवस्था का मापन मुख्यतः आय, उपभोग और बड़े उत्पादन से होता है, तब गाँव, कारीगर,

पारिवारिक उद्यम, असंगठित श्रमिक और प्रकृति विकास-कथा के हाशिये पर चले जाते हैं। दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन इसी अदृश्य हाशिये को केंद्र में लाता है; वह अर्थ को जीवन का साधन मानता है, जीवन का सर्वाधिकार नहीं। उनका सूत्र—"अर्थ के अभाव के समान ही अर्थ का प्रभाव भी धर्म का घातक होता है" अभाव और अति-संचय, दोनों को सामाजिक विकृति मानता है। इसीलिए उनके यहाँ अर्थव्यवस्था नैतिकता, संस्कृति, समाज और प्रकृति से पृथक यांत्रिक तंत्र नहीं, मानव-जीवन की समग्र व्यवस्था है (उपाध्याय, *एकात्म मानववाद* 36–39; ठेंगड़ी, 1970)।

उपाध्याय ने पश्चिमी प्रतिमानों की नकल पर प्रश्न उठाते हुए लिखा—"भारत के 'स्व' का साक्षात्कार किये बिना हम अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं पाएंगे" (उपाध्याय, *भारतीय अर्थनीति* 3)। यह कथन स्वदेशी को भावुक अतीतवाद से निकालकर ज्ञानमीमांसात्मक सिद्धांत बना देता है: समस्या को अपनी भूमि, इतिहास, संसाधन, जनसंरचना और आकांक्षा से पहचानना। यहाँ आत्मनिर्भरता का अर्थ सम्पर्क-विच्छेद नहीं, बल्कि ऐसी सामर्थ्य है जिसमें बाहरी पूँजी, तकनीक या बाजार साधन बने रहें, नियंता नहीं। इस दृष्टि से स्थानीय अर्थव्यवस्था मिट्टी की स्मृति भर नहीं; वह उत्पादन, स्वामित्व, कौशल और उत्तरदायित्व को समुदाय के निकट रखने वाली आर्थिक रचना है (उपाध्याय, *राष्ट्र जीवन की समस्याएँ*, 1960; कुमार, 2021)।

यह शोध-पत्र तीन प्रश्नों की पड़ताल करता है: उपाध्याय के यहाँ स्वदेशी और आत्मनिर्भरता का वास्तविक अर्थ क्या है; स्थानीय अर्थव्यवस्था उनके आर्थिक दर्शन में किस प्रकार आर्थिक लोकतंत्र का आधार बनती है; और डिजिटल, बाजार-केंद्रित तथा पारिस्थितिक दबावों वाले वर्तमान भारत में इन विचारों को किस सीमा तक रूपांतरित किया जा सकता है। लेख का केंद्रीय तर्क है कि उपाध्याय कोई तैयार तकनीकी अर्थ-मॉडल नहीं देते, पर विकास के मूल्यांकन की सशक्त मानवीय कसौटियाँ अवश्य देते हैं। अतः उनकी प्रासंगिकता अनुकरण में नहीं, रचनात्मक अनुवाद में है। ऐसा अनुवाद जो स्थानीय क्षमता को राष्ट्रीय मानकों और वैश्विक ज्ञान से जोड़ सके (शर्मा, 2015; गुप्ता, 2023)।

2. साहित्य समीक्षा : उपाध्याय के आर्थिक विचारों का प्राथमिक आधार *भारतीय अर्थनीति: विकास की एक दिशा*, *एकात्म मानववाद*, *राष्ट्र जीवन की समस्याएँ*, *राष्ट्र जीवन की दिशा* और *राष्ट्र चिंतन* हैं। *भारतीय अर्थनीति* औपनिवेशिक बौद्धिक निर्भरता तथा आयातित आर्थिक प्रतिमानों की आलोचना करते हुए भारतीय परिस्थितियों पर आधारित विकास-दिशा की माँग करती है। *एकात्म मानववाद* व्यक्ति को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की समग्र सत्ता मानकर अर्थव्यवस्था को मानवीय उद्देश्यों के अधीन रखता है। बाद के संकलनों में विकेंद्रीकरण, कृषि, लघु उद्योग, श्रम, मशीन और अर्थ-संस्कृति पर उनके विचार अधिक व्यापक रूप में मिलते हैं (उपाध्याय, *भारतीय अर्थनीति* 3; शर्मा, संपा., 2016)।

व्याख्यात्मक साहित्य में दत्तोपंत ठेंगड़ी ने एकात्म मानवदर्शन को व्यक्ति, समाज, प्रकृति और परमेष्ठी के संबंधों की अखंड दृष्टि के रूप में व्यवस्थित किया। शरद अनंत कुलकर्णी ने उपाध्याय के आर्थिक विचारों को 'एकात्म अर्थनीति' के रूप में पढ़ते हुए आर्थिक लोकतंत्र, विकेंद्रित उत्पादन, श्रम-प्रधानता और उपयुक्त प्रौद्योगिकी पर बल दिया। महेश चंद्र शर्मा का अध्ययन जीवन-वृत्त, राजनीतिक कर्म और विचार के परस्पर संबंध को स्पष्ट करता है, जबकि हृदय नारायण दीक्षित उपाध्याय के दर्शन में सांस्कृतिक आधार और व्यावहारिक राष्ट्र-निर्माण की एकता देखते हैं। इन ग्रंथों की उपलब्धि विचारों का सुव्यवस्थित निरूपण है; किंतु कई बार उनकी शैली आलोचनात्मक परीक्षण की अपेक्षा व्याख्यात्मक सहमति की ओर अधिक झुकती है (ठेंगड़ी, 1970; कुलकर्णी, 2014)।

हाल के हिन्दी शोध-पत्रों ने इस चिंतन को मानव-कल्याण, स्वदेशी अर्थनीति और समकालीन विकास से जोड़ा है। सुनील कुमार स्वदेशी को उत्पादन, उपभोग और तकनीक के सांस्कृतिक विवेक से संबद्ध करते हैं; सत्री

शुक्ला विकेंद्रीकरण तथा कुटीर-लघु उद्योगों में इसकी वर्तमान उपयोगिता देखते हैं। प्रवेश कुमारी के दोनों अध्ययनों में मानव-कल्याण, अर्थायाम और संस्कृतिप्रणीत अर्थनीति प्रमुख हैं। समीर कुमार गुप्ता एकात्म अर्थनीति को पूँजीवाद और राज्य-केंद्रित समाजवाद के बीच 'तीसरे विकल्प' की तरह प्रस्तुत करते हैं, जबकि प्रकाश सीरवी ग्रामीण विकास और अंतिम व्यक्ति की कसौटी पर बल देते हैं (कुमार, 79–83; कुमारी, "भारतीय संस्कृतिप्रणीत अर्थनीति" 162–169)।

शोध-प्रबंधीय साहित्य में शिवदयाल मिश्र ने उपाध्याय के शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता का समेकित अध्ययन किया है; रामप्रकाश यादव ने समकालीन भारतीय राजनीति में उनके विचारों की उपयोगिता का परीक्षण किया। यह साहित्य विषय का विस्तार करता है, पर अधिकांश अध्ययनों में प्रासंगिकता को वर्तमान योजनाओं से समानता दिखाकर सिद्ध करने की प्रवृत्ति मिलती है। स्वदेशी और संरक्षणवाद, स्थानीयकरण और लघुता, विकेंद्रीकरण और डिजिटल बाजार-संकेंद्रण, तथा नैतिक आदर्श और संस्थागत क्रियान्वयन के अंतर पर अपेक्षाकृत कम काम हुआ है। प्रस्तुत शोध इसी अंतर को भरते हुए पाठीय अवधारणाओं को आलोचनात्मक, संस्थागत और भविष्याभिमुख अर्थ देता है (मिश्र, 2023; यादव, 2021)।

3. शोध प्रविधि : अध्ययन गुणात्मक, व्याख्यात्मक और आलोचनात्मक विषयवस्तु-विश्लेषण पर आधारित है। स्रोत-समुच्चय में छह प्राथमिक कृतियाँ, चार प्रमुख व्याख्यात्मक हिन्दी ग्रंथ, छह हिन्दी अकादमिक शोध-पत्र और दो हिन्दी शोध-प्रबंध सम्मिलित हैं। चयन के मानदंड थे। विषय से प्रत्यक्ष संबंध, प्रकाशन या विश्वविद्यालयीय अभिलेख की सत्यापनीयता, मूल हिन्दी पाठ की उपलब्धता तथा आर्थिक अवधारणाओं की पर्याप्त उपस्थिति। प्राथमिक पाठों को आधार-पाठ, व्याख्यात्मक ग्रंथों को अवधारणा-स्पष्टीकरण और शोध-पत्रों व शोध-प्रबंधों को समकालीन ग्रहणशीलता के प्रमाण के रूप में पढ़ा गया (उपाध्याय, *एकात्म मानववाद* 69–82; मिश्र, 2023)।

विश्लेषण दो चरणों में किया गया। प्रथम चरण में खुली कोडिंग द्वारा 'समग्र मानव', 'अर्थायाम', 'स्वदेशी', 'काम', 'विकेंद्रीकरण', 'अंत्योदय', 'उपयुक्त तकनीक' और 'संयमित उपभोग' जैसे पाठीय संकेत चिह्नित किए गए। द्वितीय चरण में इन्हें छह केंद्रीय श्रेणियों मानव-केंद्रित लक्ष्य, उत्पादन-संरचना, रोजगार, वितरण-न्याय, तकनीकी विवेक और पारिस्थितिक मर्यादा में संयोजित किया गया। प्राथमिक कथनों की व्याख्या को द्वितीयक अध्ययनों से मिलाकर त्रिकोणीकरण किया गया, ताकि किसी एक प्रशंसात्मक या विरोधी पाठ की पूर्वधारणा परिणाम पर हावी न हो (कुलकर्णी, 2014; गुप्ता, 144–149)।

यह शोध सांख्यिकीय सर्वेक्षण या योजनागत प्रभाव-मूल्यांकन नहीं है; इसके 'डेटा' का स्वरूप पाठीय और वैचारिक है। इसलिए निष्कर्ष कारणात्मक दावे नहीं करते, बल्कि अवधारणात्मक संगति, अंतर्विरोध और संस्थागत संभावनाएँ पहचानते हैं। संस्करणों में पृष्ठांकन-भेद तथा कुछ संकलित लेखों की पुनर्प्रकाशन-तिथि अध्ययन की सीमाएँ हैं; प्रत्यक्ष उद्धरण सत्यापित संस्करणों से ही लिए गए हैं। साथ ही, समकालीन उपयोगिता की जाँच करते समय विचार और नीतिगत दावा अलग रखे गए हैं। किसी कार्यक्रम का नाम उपाध्याय से जुड़ जाना उसके विकेंद्रीकृत या मानव-केंद्रित होने का पर्याप्त प्रमाण नहीं माना गया (शुक्ला, 49–51; सीरवी, 526–530)।

4. स्वदेशी-आत्मनिर्भरता: उपाध्याय की प्रासंगिकता : उपाध्याय के यहाँ स्वदेशी का पहला अर्थ आत्मपहचान है। वह विदेशी वस्तु के यांत्रिक बहिष्कार से अधिक उस मानसिकता का प्रतिरोध है जो अपनी परिस्थितियों को पराया और बाहर से आए प्रतिमान को सार्वभौम मान लेती है। इसीलिए स्वदेशी का सकारात्मक पक्ष स्थानीय ज्ञान, संसाधन, कौशल और आवश्यकताओं को विकास-निर्णय का आरंभ-बिंदु बनाना है। बाहरी विज्ञान या तकनीक स्वीकार्य है, किंतु उसे देशकाल, रोजगार-संरचना और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुकूल बनना होगा। इस विवेक के बिना आयातित समाधान उत्पादन बढ़ा सकते हैं, पर निर्भरता, बेरोजगारी और सांस्कृतिक विच्छेद भी बढ़ा सकते हैं (उपाध्याय,

एकात्म मानववाद 82; कुमार, 80–82)।

आत्मनिर्भरता का दूसरा आधार काम है। उपाध्याय का सूत्र—"'प्रत्येक को काम' अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए" रोजगार को अवशिष्ट परिणाम नहीं, आर्थिक व्यवस्था का संवैधानिक-सा मानदंड बनाता है (उपाध्याय, *एकात्म मानववाद* 74)। यहाँ काम केवल आय नहीं; व्यक्ति की सृजनशीलता, सामाजिक सहभागिता और आत्मसम्मान का माध्यम है। ऐसी अर्थरचना पूँजी की अधिकतम उत्पादकता के साथ श्रम की निष्क्रियता स्वीकार नहीं कर सकती। अतः तकनीकी चयन का प्रश्न 'सबसे आधुनिक क्या है' से बदलकर 'कौन-सी तकनीक संसाधन, कौशल, उत्पादकता और व्यापक काम के बीच संतुलन बनाती है' हो जाता है (कुलकर्णी, 2014; कुमारी, "मानव कल्याण" 241–246)।

स्थानीय अर्थव्यवस्था इसी संतुलन की संस्थागत अभिव्यक्ति है। कृषि के साथ खाद्य-प्रसंस्करण, हस्तशिल्प, मरम्मत-सेवाएँ, लघु विनिर्माण और स्थानीय ऊर्जा जैसे परस्पर जुड़े क्षेत्र आय को समुदाय में घुमाते, कौशल को पीढ़ियों तक पहुँचाते और उत्पादन-जोखिम को वितरित करते हैं। उपाध्याय मशीन-विरोधी नहीं; वे उस तकनीकी केंद्रीकरण के आलोचक हैं जिसमें मनुष्य मशीन का अनुगामी बन जाता है। उनके विचार से प्रेरित स्थानीयकरण का अर्थ प्रत्येक वस्तु गाँव में बनाना नहीं, बल्कि जहाँ संभव हो वहाँ मूल्य-संवर्धन, स्वामित्व और निर्णय को निकटतम सक्षम स्तर पर रखना है (उपाध्याय, *एकात्म मानववाद* 74–77; शुक्ला, 50–51)।

स्वदेशी का चौथा आयाम प्रकृति-मर्यादा है। उपाध्याय उत्पादन की असीम वृद्धि के स्थान पर ऐसी व्यवस्था की बात करते हैं जिसमें प्रकृति अपनी क्षति की पूर्ति कर सके। इससे आत्मनिर्भरता का अर्थ केवल आयात-प्रतिस्थापन नहीं रहता; वह मिट्टी, जल, बीज, वन और स्थानीय जैव-संसाधनों की पुनरुत्पादक क्षमता से जुड़ता है। जो अर्थव्यवस्था आज के उपभोग के लिए कल की जीवन-भूमि नष्ट करती है, वह स्वदेशी दिख सकती है पर आत्मनिर्भर नहीं हो सकती। इसलिए संयमित उपभोग, टिकाऊ उत्पादन और स्थानीय पुनर्चक्रण उनके चिंतन से निकलने वाली समकालीन पारिस्थितिक कसौटियाँ हैं (उपाध्याय, *एकात्म मानववाद* 70–71; कुमारी, "भारतीय संस्कृतिप्रणीत अर्थनीति" 166–168)।

5. वर्तमान भारत में उपाध्याय की प्रासंगिकता : वर्तमान भारत में उपाध्याय की पहली प्रासंगिकता उत्पादन-सामर्थ्य के स्थानीय आधार को मजबूत करने में है। आत्मनिर्भरता तभी ठोस होगी जब कच्चा माल बेचने वाले क्षेत्र डिजाइन, प्रसंस्करण, गुणवत्ता, भंडारण और विपणन में भी भाग लें। स्थानीय उद्यम को केवल ऋण देना पर्याप्त नहीं; उसे साझा परीक्षण-प्रयोगशालाएँ, कौशल-केंद्र, उत्पादक सहकार, सार्वजनिक खरीद और विश्वसनीय बाजार-सूचना चाहिए। इस प्रकार स्थानीय अर्थव्यवस्था अनौपचारिक जीविका से उन्नत होकर प्रतिस्पर्धी उत्पादन-पारिस्थितिकी बन सकती है। जहाँ राष्ट्रीय मानक और वैश्विक ज्ञान स्थानीय स्वामित्व को विस्थापित नहीं, समर्थ बनाते हैं (उपाध्याय, *राष्ट्र जीवन की दिशा*, 1979; कुमार, 81–83)।

दूसरी प्रासंगिकता रोजगार की गुणवत्ता में है। उच्च उत्पादकता आवश्यक है, पर ऐसी वृद्धि जो कौशलवान युवाओं को अपने ही क्षेत्र में सम्मानजनक कार्य न दे सके, सामाजिक रूप से अधूरी है। उपाध्याय का काम-केंद्रित दृष्टिकोण कृषि-आधारित उद्योग, शिल्प-समूह, देखभाल-अर्थव्यवस्था, विकेंद्रित नवीकरणीय ऊर्जा और स्थानीय सेवाओं को एक संयुक्त रोजगार-रणनीति की तरह देखने का संकेत देता है। डिजिटल मंच यहाँ बाजार पहुँच बढ़ा सकते हैं; किंतु डेटा, शुल्क और दृश्यता पर कुछ मंचों का नियंत्रण नई निर्भरता भी बना सकता है। समाधान 'नेटवर्कित स्थानीयता' है। स्थानीय उत्पादक संघ, साझा डिजिटल अवसंरचना और पारदर्शी नियम (मिश्र, 2023; गुप्ता, 146–148)।

तीसरी प्रासंगिकता नीतियों के मूल्यांकन में है। किसी अभियान में 'स्थानीय' या 'आत्मनिर्भर' शब्द होना

पर्याप्त नहीं; देखना होगा कि क्या उससे उत्पादक संपत्ति का स्वामित्व व्यापक हुआ, क्या स्थानीय मूल्य-संवर्धन बढ़ा, क्या श्रमिक की सौदेबाजी सुधरी और क्या निर्णय नीचे तक पहुँचा। बड़े केंद्रीकृत उद्योग कभी-कभी आवश्यक हो सकते हैं, पर उन्हें समूची अर्थव्यवस्था का स्वाभाविक आदर्श मान लेना उपाध्याय की विकेंद्रीकृत दृष्टि से मेल नहीं खाता। अंतिम व्यक्ति की कसौटी घोषणात्मक करुणा नहीं, वितरण, रोजगार और पहुँच का परीक्षण है (सीरवी, 526–530; उपाध्याय, *राष्ट्र चिंतन*, 2007)।

चौथी प्रासंगिकता उनके ढाँचे के आलोचनात्मक विस्तार में है। स्थानीय समाज स्वयं शक्ति-विषमता से मुक्त नहीं होता; जाति, लिंग, भूमि-स्वामित्व और पारिवारिक श्रम की असमानताएँ स्थानीयकरण के लाभों को सीमित कर सकती हैं। अतः स्थानीय अर्थव्यवस्था को सहकारी स्वामित्व, महिला उत्पादक समूहों, सामाजिक सुरक्षा, समान मजदूरी और प्रतिनिधिक स्थानीय शासन से जोड़ना होगा। इसी प्रकार स्वदेशी को सांस्कृतिक शुद्धता नहीं, न्यायपूर्ण क्षमता के रूप में पढ़ना चाहिए। इस पुनर्पाठ में उपाध्याय का मानव-केंद्रित आग्रह आधार देता है, पर आज के लोकतांत्रिक न्याय-विमर्श से उसे अधिक स्पष्ट संस्थागत भाषा मिलती है (यादव, 2021; दीक्षित, 1996)।

6. डेटा विश्लेषण और परिणाम : अठारह स्रोतों की विषयगत कोडिंग से छह परस्पर संबद्ध अर्थ-क्षेत्र उभरे। पहला, अर्थव्यवस्था का लक्ष्य समग्र मानव का विकास; दूसरा, प्रत्येक सक्षम व्यक्ति के लिए सार्थक काम; तीसरा, अंतिम व्यक्ति के न्यूनतम जीवनस्तर और गरिमा की सुरक्षा; चौथा, उत्पादन तथा स्वामित्व का विकेंद्रीकरण; पाँचवाँ, स्वदेशी कसौटी पर तकनीक का अनुकूलन; और छठा, उपभोग तथा प्रकृति पर मर्यादा। प्राथमिक कृतियों में ये विचार दार्शनिक और मानकात्मक रूप में हैं, जबकि समकालीन शोध उन्हें ग्रामीण विकास, लघु उद्योग और मानव-कल्याण से जोड़ते हैं (उपाध्याय, *एकात्म मानववाद* 72–82; कुमारी, "मानव कल्याण" 243–245)।

सारणी 1: विषयगत कोडिंग से प्राप्त प्रमुख परिणाम

विश्लेषणात्मक कोड	प्रमुख पाठीय संकेत	प्राप्त परिणाम
समग्र मानव	शरीर-मन-बुद्धि-आत्मा; अर्थ का अभाव और प्रभाव	विकास का मापन आय के साथ गरिमा, संतुलन और सामाजिक सहभागिता से होना चाहिए।
काम और श्रम	प्रत्येक को काम; श्रम की सृजनात्मकता	रोजगार आर्थिक वृद्धि का उपफल नहीं, नीति-निर्माण की अग्रिम कसौटी है।
अंत्योदय और वितरण	न्यूनतम जीवनस्तर; जन्मगत जीवन-अधिकार	कल्याण को दान से हटाकर संस्थागत अधिकार और क्षमता-विस्तार से जोड़ना आवश्यक है।
विकेंद्रीकरण	कृषि, कुटीर-लघु उद्योग, स्थानीय स्वामित्व	स्थानीय मूल्य-संवर्धन और वितरित उत्पादक संपत्ति आर्थिक लोकतंत्र को गहरा करते हैं।
स्वदेशी तकनीकी विवेक	देशकालानुकूल मशीन और उत्पादन-पद्धति	आत्मनिर्भरता तकनीक-विरोध नहीं; चयन, अनुकूलन और नियंत्रण की क्षमता है।
प्रकृति-मर्यादा	संयमित उपभोग; संसाधन-पुनर्भरण	स्थानीय अर्थव्यवस्था को पुनर्योजी और परिपत्र उत्पादन से जोड़ना होगा।

प्रथम परिणाम यह है कि उपाध्याय की अर्थनीति में स्वदेशी, आत्मनिर्भरता और स्थानीयता अलग-अलग नीतियाँ नहीं, एक कारण-श्रृंखला हैं। राष्ट्रीय 'स्व' विकास की प्राथमिकताएँ निर्धारित करता है; आत्मनिर्भरता उन प्राथमिकताओं को पूरा करने की उत्पादन-क्षमता बनाती है; और विकेंद्रित स्थानीय संरचनाएँ उस क्षमता को समाज में वितरित करती हैं। इस श्रृंखला में यदि स्थानीयता केवल खरीद-अभियान रह जाए और उत्पादन-साधन बाहर नियंत्रित हों, तो स्वदेशी का भावात्मक रूप बचता है, आर्थिक सार नहीं। इसी प्रकार आयात घट जाना पर्याप्त नहीं, यदि

रोजगार, कौशल और तकनीकी निर्णय की निर्भरता जस की तस रहे (उपाध्याय, *भारतीय अर्थनीति* 3; कुमार, 82–83)।

द्वितीय परिणाम यह है कि 'काम' उपाध्याय के मॉडल में वितरण और उत्पादन के बीच सेतु है। केवल आय-सहायता न्यूनतम सुरक्षा दे सकती है, किंतु काम व्यक्ति को उत्पादन, कौशल और सामाजिक मान्यता से जोड़ता है। इसलिए स्थानीय उद्यम-समूहों की सफलता का मूल्यांकन केवल कारोबार से नहीं, नए कौशल, महिला सहभागिता, स्थिर रोजगार, स्थानीय क्रय और क्षेत्रीय मूल्य-गुणक से होना चाहिए। इस पाठीय निष्कर्ष को हाल के अध्ययनों में ग्रामीण उद्योग और मानव-कल्याण पर दिए बल से समर्थन मिलता है, यद्यपि विस्तृत क्षेत्रीय आँकड़ों का अभाव बना हुआ है (शुक्ला, 50; सीरवी, 528–529)।

तृतीय परिणाम एक महत्त्वपूर्ण तनाव उजागर करता है: उपाध्याय विकेंद्रीकरण चाहते हैं, किंतु समकालीन उत्पादन में मानकीकरण, अनुसंधान, वित्त और डिजिटल नेटवर्क प्रायः बड़े पैमाने पर संगठित होते हैं। पाठों से निकलने वाला समाधान न तो पूर्ण ग्राम-आत्मबंदी है, न सर्वग्रासी केंद्रीकरण; बल्कि बहुस्तरीय संघटन है। उत्पादन और स्वामित्व यथासंभव स्थानीय हों, जबकि परीक्षण, ब्रांड, ज्ञान, भुगतान और लॉजिस्टिक्स साझा क्षेत्रीय या राष्ट्रीय संस्थाओं से मिलें। इस निष्कर्ष को 'नेटवर्कित आत्मनिर्भरता' कहा जा सकता है। स्थानीय जड़ों वाला, पर ज्ञान और बाजार से संवादरत ढाँचा (कुलकर्णी, 2014; मिश्र, 2023)।

समग्रतः परिणाम बताते हैं कि उपाध्याय की वर्तमान प्रासंगिकता किसी एक नीति की पुष्टि में नहीं, विकास के प्रश्न बदलने में है: कितना उत्पादन हुआ के साथ किसके स्वामित्व में हुआ; कितनी तकनीक आई के साथ किसने उसे नियंत्रित किया; कितनी आय बढ़ी के साथ कितना सार्थक काम बना; और कितना उपभोग बढ़ा के साथ प्रकृति की पुनरुत्पादक क्षमता कितनी बची। यही प्रश्न स्थानीय अर्थव्यवस्था को संरक्षण की वस्तु नहीं, भविष्य की नवोन्मेषी आर्थिक इकाई बनाते हैं (गुप्ता, 148–149; उपाध्याय, *एकात्म मानववाद* 81–82)।

7. चर्चा : उपाध्याय का आर्थिक चिंतन पूँजीवाद और केंद्रीकृत समाजवाद, दोनों की उस साझा प्रवृत्ति की आलोचना करता है जिसमें मनुष्य उत्पादन-तंत्र का साधन बन जाता है। फिर भी 'तीसरा विकल्प' को पूर्ण तकनीकी मॉडल मानना उचित नहीं; उनके लेखन में वित्तीय संघवाद, मूल्य-निर्धारण, प्रतिस्पर्धा-नियमन या वैश्विक व्यापार की विस्तृत संस्थागत रूपरेखा नहीं मिलती। उसकी शक्ति एक मानकात्मक व्याकरण में है। मनुष्य साध्य है, काम अधिकार-सदृश आवश्यकता है, मशीन सहायक है, स्वामित्व वितरित होना चाहिए और प्रकृति असीम भंडार नहीं। इस व्याकरण को आधुनिक अर्थनीति की ठोस संस्थाओं में रूपांतरित करना आज के शोध और नीति का कार्य है। अतः इसकी समकालीन परीक्षा घोषणाओं से नहीं, संस्थागत परिणामों और नागरिक अनुभव से होनी चाहिए (गुप्ता, 144–149; ठेंगड़ी, 1970)।

यह रूपांतरण तीन द्वंद्वों को साधे बिना संभव नहीं। पहला, पैमाना बनाम निकटता: कुछ अवसंरचनाएँ बड़े पैमाने की माँग करती हैं, पर उनके लाभ और नियंत्रण का विकेंद्रीकरण संभव है। दूसरा, खुलापन बनाम आत्मनिर्भरता: ज्ञान और व्यापार से संवाद आवश्यक है, किंतु एकाधिकारपूर्ण निर्भरता से बचना भी। तीसरा, परंपरा बनाम नवाचार: स्थानीय कौशल को संग्रहालय में नहीं, डिजाइन, विज्ञान और डिजिटल साधनों के साथ जीवित उत्पादन में बदलना होगा। इसीलिए उपाध्याय का उपयोग अतीत की पुनरावृत्ति नहीं, परंपरा की उत्पादक पुनर्रचना में है (उपाध्याय, *राष्ट्र जीवन की दिशा*, 1979; शर्मा, 2015)।

आलोचनात्मक दृष्टि से उनके चिंतन में सामाजिक शक्ति-संबंधों का विश्लेषण पर्याप्त विकसित नहीं है। 'समाज' को जैविक एकता मानने से भीतर की असमानताएँ कभी-कभी अस्पष्ट हो सकती हैं। वर्तमान अनुसंधान को स्थानीय स्वामित्व में जाति और लिंग की हिस्सेदारी, घरेलू और देखभाल-श्रम का मूल्य, प्लेटफॉर्म-एकाधिकार, हरित

संक्रमण की लागत तथा क्षेत्रीय संसाधन-न्याय जैसे प्रश्न जोड़ने चाहिए। आगे के अनुभवजन्य अध्ययनों में स्थानीय मूल्य-गुणक, रोजगार-लोच, आयात-निर्भरता, उत्पादक संपत्ति के वितरण और संसाधन-पुनर्भरण को मापकर यह जाँचा जा सकता है कि कौन-सी संस्थाएँ वास्तव में एकात्म और अंत्योदयपरक परिणाम देती हैं। इससे विचारधारा को परीक्षणयोग्य सामाजिक विज्ञान में बदला जा सकेगा (यादव, 2021; कुमारी, "भारतीय संस्कृतिप्रणीत अर्थनीति" 168–169)।

8. निष्कर्ष : दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक चिंतन का समकालीन महत्त्व इस तथ्य में है कि वह विकास को बाजार की गति से हटाकर मनुष्य और समुदाय की दिशा से परखता है। स्वदेशी उनके यहाँ बंद सीमा नहीं, अपने 'स्व' से आरंभ होने वाला चयन-विवेक है; आत्मनिर्भरता आत्मबंदी नहीं, उत्पादन, कौशल और निर्णय की स्वाधीन क्षमता है; और स्थानीय अर्थव्यवस्था पिछड़ेपन का पर्याय नहीं, वितरित स्वामित्व तथा आर्थिक लोकतंत्र की आधारभूमि है। पाठ-विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ कि रोजगार, अंत्योदय, उपयुक्त तकनीक और प्रकृति-मर्यादा इन तीनों अवधारणाओं को एक अखंड अर्थ देते हैं (उपाध्याय, *भारतीय अर्थनीति* 3; उपाध्याय, *एकात्म मानववाद* 70–82)।

वर्तमान भारत के लिए इससे चार स्पष्ट दिशाएँ निकलती हैं: स्थानीय उत्पादकता को डिजाइन, वित्त और बाजार-संरचना से सशक्त करना; प्रत्येक व्यक्ति के लिए गरिमापूर्ण काम को विकास की मूल कसौटी बनाना; तकनीक को रोजगार, स्वामित्व और सामाजिक उद्देश्य के अनुरूप चुनना; तथा उत्पादन को प्रकृति की पुनरुत्पादक सीमा के भीतर रखना। पर इस दृष्टि को सार्थक बनाने के लिए जाति, लिंग, डिजिटल शक्ति और वैश्विक आपूर्ति-शृंखलाओं पर नई संस्थागत समझ जोड़नी होगी। इसलिए उपाध्याय की प्रासंगिकता श्रद्धामूलक पुनरुक्ति में नहीं, आलोचनात्मक सृजन में है। उनकी अर्थदृष्टि हमें स्मरण कराती है कि आत्मनिर्भर राष्ट्र वही है जिसकी अर्थव्यवस्था अपने सबसे निर्बल नागरिक को बोझ नहीं, भविष्य का सह-निर्माता मानती है। यह दृष्टि स्थानीयता को संकीर्ण भूगोल नहीं, संबंध, उत्तरदायित्व और सृजन की जीवित नैतिकता में रूपांतरित करती है (मिश्र, 2023; दीक्षित, 1996)।

संदर्भ सूची :

1. उपाध्याय, दीनदयाल. *एकात्म मानववाद*. नवम संस्करण, जागृति प्रकाशन, नोएडा, 2004.
2. उपाध्याय, दीनदयाल. *भारतीय अर्थनीतिः विकास की एक दिशा*. राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ, 1958.
3. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र चिंतन*. लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2007.
4. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र जीवन की दिशा*. लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 1979.
5. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र जीवन की समस्याएँ*. राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ, 1960.
6. कुमार, सुनील. "पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के स्वदेशी आर्थिक चिन्तन का समीक्षात्मक विश्लेषण." *शिक्षण संशोधन: जर्नल ऑफ आर्ट्स, ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज*, खंड 4, अंक 11, नवम्बर 2021, पृ. 79–83.
7. कुमारी, प्रवेश. "भारतीय संस्कृतिप्रणीत अर्थनीतिः पं. दीनदयाल उपाध्याय." *शोध मंथन*, खंड 11, अंक 2, अप्रैल–जून 2020, पृ. 162–169.
8. कुमारी, प्रवेश. "पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारों की मानव कल्याण में भूमिका." *शोध मंथन*, खंड 10, अंक 1, जनवरी–मार्च 2019, पृ. 241–246.
9. कुलकर्णी, शरद अनंत. *पंडित दीनदयाल उपाध्यायः विचार-दर्शन, खंड 4—एकात्म अर्थनीति*. सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.
10. गुप्ता, समीर कुमार. "एकात्म अर्थनीतिः एक तीसरा विकल्प." *द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मल्टीडिसिप्लिनरी साइंसेज*, खंड 6, अंक 1, जनवरी 2023, पृ. 144–149.
11. ठेंगड़ी, दत्तोपंत. *एकात्म मानवदर्शनः एक अध्ययन*. लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 1970.
12. दीक्षित, हृदय नारायण. *तत्त्वदर्शी दीनदयाल उपाध्याय*. दीनदयाल उपाध्याय सेवा प्रतिष्ठान, लखनऊ, 1996.

13. मिश्र, शिवदयाल. *पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक विचारों की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता का अध्ययन.* 2023. इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज इन एजुकेशन (आई.ए.एस.ई.), पी-एच.डी. शोधप्रबंध.
14. यादव, रामप्रकाश. *समसामयिक भारतीय राजनीति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता.* 2021. बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, पी-एच.डी. शोधप्रबंध.
15. शर्मा, महेश चंद्र, संपादक. *दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय.* खंड 5, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016.
16. शर्मा, महेश चंद्र. *पंडित दीनदयाल उपाध्याय: कर्तृत्व एवं विचार.* प्रथम संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.
17. शुक्ला, सत्री. "दीन दयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता." *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च,* खंड 7, अंक 4, 2021, पृ. 49–51.
18. सीरवी, प्रकाश. "आर्थिक विकास का पं. दीनदयाल उपाध्याय का दृष्टिकोण." *इंटरनेशनल जर्नल फॉर रिसर्च ट्रेंड्स एंड इनोवेशन,* खंड 8, अंक 8, अगस्त 2023, पृ. 526–530.

•